Fortnightly per copy Rs. 12/-

ओ३म्

18th January 2025

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Phone No. : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय

सवतन्त्रता सेनानी, 1865-1928

व्यक्ति एक : व्यक्तित्व अनेक

-डॉ. रघुबीर वेदालंकार

गलती से या किसी अन्य कारण से महात्मा विशेषण अनेक व्यक्तियों के साथ लगा दिया जाता है किन्तु महात्मा की कसौटी पर उतरने वाले व्यक्ति थोड़े ही होते हैं । महात्मा-महान् आत्मा । महान् आत्मा वैसे ही नहीं बन जाता । उसे इसके लिए अपने अन्दर कुछ गुणों को धारण करना होता है, जो गुण सामान्य व्यक्ति के जीवन में देखने को नहीं मिलते । संक्षेप में त्याग, तपस्या, सत्यता, सेवा, देश प्रेम, ईश्वर भक्ति ऐसे गुण हैं जो व्यक्ति को सामान्य मानव से उठाकर महात्मा बना देते हैं । इसके आगे योग, विद्वत्ता आदि कुछ गुण ऐसे हैं जो महात्मा को ऋषि बना देते हैं ।

हमारे चरितनायक महात्मा हंसराज जी वास्तव में महात्मा थे । उपर्युक्त त्याग, तपस्या, सेवा आदि गुण उनमें कूट-कूटकर भरे हुए थे । तपस्वी तो वे उसी समय से थे जब उन्हें बाल्यकाल में जूतों के अभाव में गर्मी में तपती धरती पर नंगे पैर ही स्कूल के लिए जाना पड़ता था । यही तपस्या उनके जीवन में अन्त तक समाविष्ट रही । सभी सुख-साधनों की उपस्थिति होने पर भी उन्होंने तपस्यापूर्ण जीवन ही बिताया । डी.ए.वी. कॉलेज का का प्राचार्य बनकर भी विलासी जीवन से दूर रहकर एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करना उन्हें महात्मा बनाता है ।

तपस्या के साथ त्याग भी अनिवार्य है । महात्मा हंसराज सर्वस्व त्यागी थे । उनके पास अपना कुछ था ही नहीं । वर्तमान युग में परिग्रहवृत्ति ही जन जीवन को अस्त-व्यस्त तथा दुःखी कर रही है । चारों ओर से जितना चाहो, समेटे जाओ । दूसरों को लूटने जाओ, अपना घर भरते जाओ । यही है आज का परिग्रहपूर्ण जीवन । महात्मा हंसराज इसके उत्तर थे । इस विषय में वे अपने गुरु महर्षि दयानन्द के अनुयायी थे, जिनके पास अपना कुछ था ही नहीं । यहाँ तक कि एक छोटी-सी कुटिया भी नहीं । योगदर्शन का अपरिग्रह रूपी नियम उनके जीवन में ओत-प्रोत था ।

एक युक्ति है सेवा धर्म-परम गहनो योगिनामप्यगम्यः अर्थात् सेवा रूपी धर्म का आचरण अत्यन्त कठिन है । महात्मा हंसराज ने प्रसन्नतापूर्वक आजीवन इस सेवाव्रत का पालन किया । कॉलेज के प्राचार्य के रूप में तो उनकी निःशुल्क सेवा अतुलनीय थी । भूकम्प आदि के अवसरों पर वे देश-सेवा करने में भी सर्वदा अग्रणी रहे । कह सकते हैं कि हंसराज जी का सम्पूर्ण जीवन सेवामय ही बना ।

महात्मा हंसराज, महर्षि दयानन्द के प्रथम-पंक्ति के शिष्य थे । अतः गुरु के गुण शिष्य में आना स्वाभाविक ही था, किन्तु इसके लिए व्यक्ति में इच्छा भी होनी चाहिए । महात्मा जी में वह इच्छा तथा संकल्प विद्यमान थे, जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श जीवन जिया । महात्मा जी की अर्थशुचिता भी अपने आप में एक उदाहरण है तथा वर्तमान लोभ-लालच के युग में हमारा मार्गदर्शन कर रही हैं । इस प्रकार महात्मा हंसराज जी में अनेक गुणों का संगम था जिनका उल्लेख लेखकों के द्वारा किया भी जाता रहा है । इस प्रकार देखने में तो महात्मा हंसराज एक व्यक्ति थे, किन्तु वे अनेक व्यक्तित्वों के धनी भी थे । इसीलिए उनके लिए **'व्यक्ति एक : व्यक्तित्व अनेक'** शीर्षक मैंने चुना । इस यज्ञ में घृत-सामग्री आदि की आहुति देकर कहते हैं- इदन्नमम् । यह मेरी नहीं है । यह आहुति विश्व के लिए है । शास्त्रों में मानव जीवन को भी यज्ञ कहा गया है । महात्मा जी का सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञमय था । इस यज्ञ में व्यक्ति घृत-सामग्री की आहुति नहीं डालता, अपितु अपने जीवन को ही यज्ञीय कार्यों के लिए समर्पित कर देता है । महात्मा जी ने भी अपना सारा जीवन इस सेवायज्ञ में समर्पित कर दिया । गीत की यह पंक्ति अभी भी आर्य जनों के द्वारा गुनगुनायी जाती है-

'हंस हंस के हंसराज ने जीवन व धन लुटा दिया । धन्य है तुमको ए ऋषि तूने हमें जगा दिया ।'

जब तक आर्य समाज के महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द, पंडित गुरुदत्त जैसे त्यागी, तपस्वी, सेवा व्रतियों का मार्गदर्शन मिलता रहा, तब तक वह दौड़ता रहा । अब वैसा नेतृत्व न होने से वह शिथिल तता विभ्रमित हो गया । महात्मा जी के जन्मोत्सव पर उन्हें सादर नमन !

अवतार और पैगम्बरवाद का बोलबाला

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्ययुत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

'ऐ अर्जुन ! जब कभी धर्म का पतन होता है, तो उसको फिर से उठाने के लिए मैं स्वयं को उत्पन्न करता हूँ ।'

'भले मनुष्यों की रक्षा करने तथा बुरे लोगों का नाश करने के लिए मैं हर युग या काल में जन्म लेता हूँ ।'

गीता के इस श्लोक को ईश्वर के अवतार लेने के विषय में प्रस्तुत किया जाता है । श्री कृष्ण ईश्वर के अवतार थे और अर्जुन से कहते थे कि जब-जब धर्म का नाश होता है और पाप बढ़ जाता है तो धर्म पर चलने वालों की सहायता के लिए और दुष्टों का नाश करने के लिए जन्म लेता हूँ । इस विचारधारा के अनुसार जब-जब वैदिक धर्म पर आपत्ति आई और वेदों के विरोधियों ने सिर उठाया तब-तब परमात्मा ने स्वयं मनुष्य के स्वरूप में अवतरित होकर बुरे मनुष्यों का नाश किया और धर्म का पुनरुद्धार किया । यह विचार हिन्दू धर्म की एक आधारशिला है । महाभारत से पूर्व नरसिंह अवतार, शुक्र अवतार, कच्छ अवतार (कछवे के रूप में) मच्छ अवतार (मीन के रूप में), राम अवतार आदि होते रहे । इन अवतारों ने राक्षसों को मारकर धर्म को पुनर्जीवित किया ।

भारतवर्ष के बाहर इसी नियम ने एक नया रूप ग्रहण किया । उन्होंने इस बात को अधर्म समझा कि ईश्वर अपने उच्च स्थान को छोड़कर धरती के निचले फर्श पर प्रकट होने की आवश्यकता का अनुभव करे । सर्व शक्तिमान् ईश्वर सभी कुछ कर सकता है । फिर उन्होंने देखा कि राजा समस्त कार्य स्वयं नहीं करता । उसे क्या आवश्यकता है कि अपने सिंहासन से नीचे उतरे ? उसके अनेक सेवक हैं । इसलिए जर्तुश्त आदि लोगों ने एक नया मत निकाला । इस मत के अनुसार जब कभी धर्म का पतन हुआ तो ईश्वर ने स्वयं अपने नबियों (दूतों) को संसर में भेजा है कि वह संसार में लोगों को सत्य मार्ग दिखाएँ और दुर्जनों का नाश करें । इसलिए जो पथ-प्रदर्शक पाश्चात्य देशों में हुए वह ईश्वर तो न थे, परन्तु ईश्वर के एजेण्ट या गवर्नर जनरल अवश्य थे । उनका वही प्रयोजन तथा कार्यक्षेत्र था जो अवतार से सम्बन्धित किया जाता है । राम के साथ रावण और कृष्ण के साथ कंस का सम्बन्ध है । मूसा के साथ फिर-औन का और ईसा के साथ यहूदी पुजारियों का सम्बन्ध है । हजरत मुहम्मद साहब के साथ मक्का और मदीना के काफिरों का एक समूह था, जिससे वह निरन्तर युद्ध करते रहे ।

वेदों का विचार इसके विपरीत है । वेदान्त दर्शन में जहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि ब्रह्म क्या है ? तो उसका उत्तर दिया गया कि वह सर्वोत्तम सत्ता जिससे सृष्टि की रचना, पालन-पोषण और अन्त होता है वही ईश्वर है । यह ईश्वर प्रतिक्षण किसी न किसी वस्तु को जन्म देता और बढ़ाता रहता है । तथा उसको मारता भी है । कुरान में भी तो बहुधा आता है कि ईश्वर वह है जो जीवन से मृत्यु तथा मृत्यु से जीवन देता है । प्रत्येक का जन्म और मृत्यु यदि उसी के हाथ में है तो उसे स्वयं जन्म लेने या नबी (देवदूत) भेजने की आवश्यकता नहीं । राजा अपने दूतों को वहाँ भेजता है जहाँ वह स्वयं पहुँच नहीं सकता । ईश्वर तो सीमित सत्ता तथा सीमित शक्ति वाला नहीं । यह हुई युक्ति । अब इतिहास की ओर आइए । हम देखते हैं कि मनुष्यों पर कठिन से कठिन दुःख आए, वे पथ से विचलित भी हुए और अविद्या में भी पड़े रहे । परन्तु न तो कोई अवतार हुआ और न कोई नबी या पैगम्बर आया । आज भी बहुत से असभ्य अशिक्षित समाज हैं । इन समाजों पर शासन करने के लिए शक्तिशाली जातियाँ प्रभुत्व स्थापित किया करती हैं । इन समाजों में स्वयं भी बहुत-सी आन्तरिक त्रुटियां हैं । जो उनकी

सफलता में बाधक होती हैं । परन्तु कोई पैगम्बर या नबी नहीं आता । यदि हजरत ईसा के अवतार की बात सत्य होती तो आज दो हज़ार वर्षों के भीतर सैकड़ों समाज नष्ट होते रहे कोई ईसा फिर न आया और न मुहम्मद साहब और उनके स्थान पर किसी दूसरे ने जन्म लिया । भारतवर्ष में हत्याएँ होती रहीं, जीवित विधवाएँ अपने मरे हुएपतियों के साथ जलाई जाती रहीं, न कोई अवतार बचाने आया और न कोई पैगम्बर समझाने आया ।

इससे ज्ञात होता है कि इस लेख के आरम्भ में जो श्लोक गीता का हमने दिया है वह केवल स्वार्थियों का दम्भ है । परमात्मा मनुष्य के सुधार के लिए न स्वयं आता है और न किसी को भेजता है । वैदिक काल में सैकड़ों ऋषि-मुनी और समाज-सुधारक उत्पन्न हुए । उन्होंने पथ-प्रदर्शन का कार्य भी किया और लोगों को सन्मार्ग से डिगने से भी बचाया, परन्तु उन्होंने कदापि पैगम्बर होने का दावा नहीं किया । वह केवल अपने उस धर्म का पालन करते रहे जो एक पंडित अपने काल के अज्ञानी समाज के लिए करता है या एक अध्यापक अपने शिक्षार्थियों के लिए करता है । यदि हम प्राकृतिक नियमों को ध्यानपूर्वक देखें तो ज्ञान होता है कि जो काम मनुष्य को करना चाहिए वह ईश्वर स्वयं नहीं करता । यदि आप अपने घर की मरम्मत न करें तो आँधी-बरसात में वह घर गिर जाएगा । ईश्वर अवतार लेकर इस घर की मरम्मत और रक्षा न करेगा । यदि आप अपने शरीर को प्रतिदिन शुद्ध न करें तो परमात्मा आपके मुख को नहीं धोता । परमात्मा प्रेरणा करता है । आदेश नहीं देता । जब हम रात को सोने के पश्चात् सवेरे उठते हैं, तो प्राकृतिक नियमों के अनुसार हमारे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि अपने मुँह को शुद्ध करें । मकान साफ किया जाए । ईश्वर स्वयं झाड़ू नहीं लगाता । इसी प्रकार अशिक्षित जनता में शिक्षा की इच्छा तो रहती है, किन्तु ईश्वर स्वयं अवतार लेकर कभी स्कूल या पाठशाला खोलने नहीं आता । प्रेरणा भिन्न वस्तु है, और आदेश भिन्न वस्तु । यदि ईश्वर की ओर से आदेश होता तो कौन-सी शक्ति थी जो उस आदेश की पूर्ति में विघ्न डाल सकती । इसीलिए अवतार लेना या पैगम्बर भेजना यह एक निरर्थक विचार है, वेदों की शिक्षा के विरुद्ध है और इस विश्वास ने धोकेबाजों को दम्भ करने का अवसर प्रदान किया है । जिस मनुष्य में कुछ असाधारण बुद्धि या शक्ति होती है, वही पैगम्बरों का दावेदार हो जाता है ।

आर्य समाज के लोगों पर भी गीता के उपर्युक्त श्लोक का हम बहुधा कुछ न कुछ प्रभाव पाते हैं । बहुधा लोगों को कहते सुना है कि वैदिक धर्म की ग्लानि लेखकर ईश्वर ने हमारे पथ-प्रदर्शन के लिए स्वामी दयानन्द को भेजा । यह प्रश्न है कि क्या वह ईश्वर के भेजे हुए रसूल या पैगम्बर थे । एक दूसरे स्वामी दयानन्द हुए हैं जो सनातन धर्म के प्रसिद्ध उपदेशक थे । उन्होंने अपनी पुस्तक 'धर्मकल्पद्रुम' में लिखा है कि आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द भी ईश्वर के अवतार ते । यह अवतारों की परम्परा बराबर चल रही है ।

महर्षि दयानन्द ने कभी ऐसा दावा नहीं किया । महर्षि दयानन्द की यह स्वाभाविक महत्तवाकांक्षा थी कि वह पथ-भ्रष्ट व्यक्तियों को सीधे मार्ग पर लगा दें । उन्होंने जो कुछ किया उसके वह स्वयं उत्तरदाता थे ।

महात्मा श्रीकृष्ण ने भी यदि कौरवों को समझाने या पांडवों की सहायता करने का प्रयत्न किया तो वह स्वयं उनकी स्वाभाविक सहानुभूति थी । इसमें न तो ईश्वर के अवतार लेने की आवश्यकता थी और न उसको पैगम्बर भेजने की । महाभारत युग में किसी ने किसी को अवतार नहीं माना । न भीष्म पितामह ने, न युधिष्ठिर ने और न उसके भाइयों ने, न दुर्योधन आदि विरोधियों ने । श्री कृष्ण को अवतार का रूप देने वाले तो महाभारत के बहुत समय के पश्चात् कुछ स्वार्थी मनुष्य हुए जो श्री कृष्ण का नाम लेकर अज्ञानी लोगों को बहकाने और उनकी अज्ञानता से लाभ उठाते रहे ।

स्वामी दयानन्द को परमात्मा की ओर से भेजा हुआ रसूल मानना स्वामी दयानन्द की महत्ता को बढ़ाना नहीं वरन् कम करना है । जितने लोगों ने पैगम्बरी का दावा किया है उन्होंने अपने को ईश्वर के हाथ का एक औजार बना रखा है । करता है ईश्वर परन्तु पैगम्बर के हाथ से करता है । आदेश ईश्वर देता है, परन्तु पैगम्बर के मुख से देता है । इससे पैगम्बर केवल ग्रामोफोन का काम

देते हैं। वह किसी काम के लिए स्वयं उत्तरदाता नहीं हैं। स्वामी दयानन्द का ऐसा दावा नहीं है। वह न ईश्वर के अवतार हैं न पैगम्बर। केवल एक समाज सुधारक हैं, जो प्रकृति नियम के अनुसार प्रेरणा पाकर मनुष्य को डिगाने से बचाने का प्रयत्न करते हैं।

उनके ऊपर कोई नवीन नियम नहीं उतरता और न कोई प्राचीन नियम में परिवर्तन की आवश्यकता है। स्वामी दयानन्द के पास कोई दूत किसी स्वर्ग से सन्देश नहीं लाता। महर्षि दयानन्द की शिक्षा में किसी काल्पनिक अर्श, काल्पनिक स्वर्ग या काल्पनिक दूत की आवश्यकता नहीं। वेद की सबसे प्राचीन शिक्षा और ईश्वर की प्राचीन सत्ता यह उसकी प्रेरणा के लिए पर्याप्त है। उन्होंने वही किया जो ऋषि-महर्षि प्राचीन काल से करते आए हैं।

महाभारत के पतन पर सुधार मेंक्या-क्या प्रयत्न हुए उनका उल्लेख कम आकर्षक न होगा।

अँधेरी रात में प्रकाश किरण

जिसने जन्म लिया है वह मरेगा-यह एक ईश्वरीय नियम है। पंडित भी मरते हैं, मूर्ख भी, वीर भी मरते हैं और कायर भी, बृद्ध भी मरते हैं औ रतरुण भी, इसलिए यदि महाभारत के युद्ध में भारतवर्ष के विद्वान् और शक्तिशाली लोग मर गए तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं और न शोक की बात है। यदि महाभारत न होता तो क्या भीष्म पितामह न मरते या दुर्योधन या कर्ण की मृत्यु न होती। शर-शय्या पर मरते या निवाड़ की खाट पर, रणक्षेत्र में मरते या घर की कोठरी में, मरना तो एक आवश्यक और अनिवार्य घटना है। परन्तु मरने वालों में विभिन्नता है। एक मरता है तो अपनी सन्तान के लिए उन्नति का मार्ग खोल जाता है। दूसरा मरता है तो उसकी सन्तान नष्ट हो जाती है।

हम सब मरेंगे परन्तु प्रश्न यह है कि हम दायभाग में क्या छोड़ जाएँ? उन्नति के मार्ग को प्रज्वलित करने वाली मशाल या नाश और पतन को ले जाने वाला अज्ञानता, कायरता और अन्धकार। महाभारत का युद्ध हुआ धर्म के नाम पर। परन्तु जब यह युद्ध समाप्त हुआ तो धर्म भी न रहा और धर्म की दोहाई देने वाले वीर पुरुष भी न रहे। सबसे अधिक निराशा तो श्रीकृष्ण महाराज को हुई। उन्होंने अपने परिवार अर्थात् यादव लोगों को मदिरा, मादकता, अधर्म और समस्त बुराइयों में लिप्त पाया और उन्होंने यद्यपि बड़ी आयु पाई परन्तु थी वह निराशा की आयु। जब हम महाभारत के पश्चात् की भारतवर्ष की दशा देखते हैं तो अर्जुन के वह शब्द सामने आ जाते हैं जिनका 'गीता' के आरम्भ में उल्लेख किया गया है।

अर्जुन का विरोध यह था कि यदि मैं युद्ध में सम्मिलित हुआ, और अपने पराए के भेद को समाप्त कर अपने धनुष और बाण का प्रयाग किया तो उसका परिणाम देश, समाज और मानवता के लिए अनुचित होगा। धर्म नष्ट हो जाएगा, अज्ञानता की रात आ जाएगी, लोग धर्म भ्रष्ट होंगे, देवियाँ अपने सतीत्व को छोड़ देंगी। सन्तान वर्णसंकर और अयोग्य होगी इसलिए अच्छा है कि मारा जाऊँ परन्तु संस्कृति और धर्म को मारने का कलंक मेरे नाम पर न लगे। श्रीकृष्ण जी की ओर से जो उत्तर गीता में दिया गया है वह सबके समक्ष है। अर्जुन के किसी तर्क का सन्तोषजनक उत्तर नहीं है। अर्जुन की भविष्यवाणी का कोई विरोध नहीं है केवल यही कहा गया है कि क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना है ननुनच करना नहीं। यदि तू मारा गया तो तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा और यदि तुम जीत गए तो तुम्हें राज्य की बड़ी सम्पत्ति हाथ आएगी। इस प्रकार मरने में भी लाभ है और जीवित रहने में भी।

अर्जुन मरा नहीं इसलिए मोक्ष का प्रश्न तो उठता नहीं। वह विजयी भी हो गया, राज्य भी उसके हाथ आ गया। परन्तु जो पतन महाभारत के समाप्त होने पर आरम्भ हुआ उसकी अवनति की ओर जाने की प्रगति को कोई न रोक सका। यदि केवल वीरों की मृत्यु होती तो इतनी हानि न थी। मृत्यु हुई वीरता की, विद्या की, संस्कृति की। स्वामी दयानन्द मर गए। यदि उन्हें विष न दिया जाता तो भी मरते, किसी और प्रकार से मरते, अमर तो हो नही सकते थे। वह मरे परन्तु वैदिक सभ्यता को पुनर्जीवित करके मरे। समस्त मानव-समाज के दृष्टिकोण को बदलकर मरे। महात्मा गाँधी मरे। नाथूराम गोडसे की गोली से मरे। यदि नाथूराम अपने ऊपर इस

कलंक को न लेता तो भी क्या महात्मा गाँधी अमर थे ? क्या उनकी मृत्यु न होती ? होती तो अवश्य परन्तु गाँधी जी की मृत्यु ने सारी भारतीय जनता को एक नवीन जीवन प्रदान किया । उनकी हड्डियों और उनकी राख के कण-कण में वह बिजली की शक्ति है जो निराश प्रजा में स्वतन्त्रता की आशा उत्पन्न कर देती है ।

महाभारत के पश्चात् हम यह बात नहीं देखते । महाराज युधिष्ठिर को राजगद्दी मिली और एक दीर्घ काल तक इन्द्रप्रस्थ की राजधानी युधिष्ठिर की सन्तान के हाथ में रहीं परन्तु उसके साथ-साथ हम वैदिक संस्कृति की उन्नति का कोई चिह्न नहीं देखते । महाभारत से लेकर हजरत ईसा के एक हजार शताब्दी तक भारतीय राजाओं का शासन रहा । उनमें बहुत से वीर ज्ञानी और पंडित हुए परन्तु यह चार हज़ार वर्ष का वह काल था जिसमें वैदिक संस्कृति पतन की ओर बढ़ती चली गई और इसी बीच बीसों उन धर्मों का जन्म हुआ जो वैदिक धर्म के विपरीत थे ।

मनुस्मृति में हम पढ़ते हैं-

एतदूदेशप्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरेन्
पृथिव्यां सर्व मानवः ।।

अर्थात् भारत के विद्वानों ने ही संसार के अनेक मार्गों में अनेक जातियों को धर्म का उपदेश दिया और दूसरे देशों में जो धर्म की शिक्षा फैली वह उनको भारतवर्ष से ही प्राप्त हुई ।

ऐसी बात हम इन चार हजार वर्षों में नहीं पाते । यह अवश्य है कि आरम्भ में भारतवर्ष की शक्ति दूसरे देशों से अधिक रही और उनकी शिक्षा-दीक्षा और संस्कृति भी उच्च प्रकार की थी किन्तु संसार गुरु के होने की जो पुरानी योग्यता थी वह जाती रही । जर्तुश्त से लेकर मुहम्मद साहब तक भारतवर्ष के बाहर जो धर्म कालान्तर में हुए वह सब महाभारत के पश्चात् की बात है । महाभारत के युद्ध में सारे संसार के वीरों ने भाग लिया परन्तु वहसब वैदिक धर्मी थे चाहे उनका आचरण कैसा ही क्यों न रहा हो । धर्म को परखने के लिए कसौटी तो एक थी, अर्थात् वेद सब धर्मों का मूल है । महाभारत के पश्चात् सबसे अधिक कुप्रभाव धर्म के उस मूल अर्थात् जड़ पर पड़ा । जड़ को पानी देना बन्द होगया । जड़ के सूखने से वृक्ष के पत्र, शाखा तथा पुष्प सब सूखने लग गए । बिना माली के वाटिका के सूखने पर जो बुलबुलों की दशा होती है वही संसार के लोगों की हुई । जिसमें कुछ बुद्धि हुई वह अपनी बुद्धि के कारण धर्म के नवीन नियमों का प्रचारक बन गया ।

जब सूर्य अस्त हो जाता है तो चारो ओर अन्धकार छा जाता है । लोगों के कारोबार में विच्छेद उत्पन्न हो जाता है । उस समय लोग बनावटी दिया जलाते हैं । कहीं-कहीं तो अन्धेरे वनों में केवल खद्योत का ही प्रकाश होता है जिससे एक क्षण के लिए अन्धकार समाप्त होता है । केवल कुछ आशा-सी उत्पन्न हो जाती है । कभी बिजली तड़पकर केवल यह प्रसन्नता उत्पन्न कर जाती है कि प्रकाश संसार से समाप्त नहीं हुआ फिर प्रकाश आने की आशा है । इसी अन्धकार के प्रयत्न का परिणाम है दीपक का आविष्कार, मिट्टी के दिए, सरसों या तिल्ली का तेल यह मनुष्य की उस समय की खोज रही होगी । फिर आँधी से दीपक को सुरक्षित रखने के लिए नवीन-नवीन आविष्कार हुए होंगे।

आज विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि संसार को सूर्य की आवश्यकता ही नहीं रही । आधी रात को भी हम दोपहर का प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं । इसी प्रकार मनुष्य समाज ने अपने साधारण व्यवसाय को सुरक्षित रखने के लिए कुछ न कुछ धार्मिक नियम बनाए और उनकी रक्षा भी की । कौन धर्म कहाँ और कब अथवा कैसे उत्पन्न हुआ ? उसमें क्या विकार उत्पन्न हुए ? और उन समस्त विकारों के निवारण के लिए क्या-क्या प्रयत्न धर्म के मानने वालों ने किए यह एक रुचिकर और लाभप्रद कहानी है ।

महाभारत के कुछ समय पश्चात् ही जर्तुश्त का काल आता है । उस समय न हजरत मूसा ने जन्म लिया था, न हजरत ईसा ने और न दूसरे नबी या रसूल ने । जर्तुश्त का देश भारतवर्ष के अत्यन्त समीप था । और जर्तुश्त के विचार भी भारतवर्ष के ऋषियों के विचारों से बहुत मिलते-जुलते थे । इसके अतिरिक्त जर्तुस्त की भी भाषा वैदिक भाषा के अधिक समीप है । लगभग वही भेद है जो भौगोलिक दूरी के कारण उच्चारण

धर्मशील

-पं. श्री लालचन्द

धर्मशील मनुष्यों में भय और सन्देह नहीं होता, उनमें परस्पर आदर, विश्वास और सौजन्य होता है । प्रायः जितने भेदभाव हैं वे एक-दूसरे को सम्यक् रूप से न जानने के कारण होते हैं । यह सत्य है कि संसार में संघर्ष भी स्थायी शान्ति के लिए ही होते हैं । आपस की जानकारी, एक-दूसरे को भली प्रकार जानना और संशयरहित भावना से परस्पर का मेल चाहना और करना तथा चिरकाल तक निभाना हृदय की सरलता और मन की पवित्रता पर निर्भर है । मनुष्यों में जो एक दूसरे पर की चड़ उछालने की प्रवृत्ति है, यह त्याज्य है, इसका कारण सन्देह है । मलिन मन में ही सन्देह उत्पन्न होता है । पवित्र मन में तो सन्देह के लिए स्थान ही नहीं । हम आपस के सम्बन्ध पवित्रता, श्रद्धा और विश्वास पर दृढ़ रहे, तब ही सौहार्द सम्बन्ध पवित्रता, श्रद्धा और विश्वास पर दृढ़ रहें, तब ही सौहार्द सम्भव है । वही हृदय सुन्दर है, जिसमें आपस के बन्धुत्व की भावना जागृत है । जब हम एक-दूसरे से प्रेम के सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो अवश्य परस्पर हृदय-कमल खिलते हैं । ऐसे शुद्ध और सरल व्यवहार करने वाले मनुष्य ही धर्मशील कहे जाते हैं और उनमें ऐश्वर्य और शान्ति होती है, उनमें अभ्युदय भी होता है और वे कल्याणपथ के पथिक रहते हुए अपना तथा अन्यों का सच्चा कल्याण करने में समर्थ होते हैं ।

धर्मशील मनुष्य अपने सदाचार और आपस के सरल व्यवहार के कारण लोकप्रिय हो जाते हैं । मनुष्य की प्रवृत्ति में संघर्ष नहीं । मनुष्य स्वभावतः स्वयं शान्ति में रहना चाहता है और दूसरों से भी शान्ति की ही आशा करता है । स्वयं जिए और दूसरों को जीने दे, यह सिद्धान्त मानवता का है । इसके विपरीत अपने बल और शान्ति से दूसरों को उनके अधिकारों से वंचित करना और उनकी शान्ति में बाधा डालना दानवता है, यही आसुरी प्रवृत्ति है । जब कि एक मनुष्य अथवा मनुष्य समुद्र दूसरों के विकास में रुकावट डालकर प्रसन्न होते हैं और इसे अपने विजय-कामना कहते हैं । दुर्बल होना, अशक्त होना एक पाप है पर साथ ही यह भी पूरी आसुरी प्रवृत्ति ही है जो कि शान्ति से रहते हुए एक राज्य पर दूसरा राज्य केवल इसलिए आक्रमण करके हर्ष मनाए कि वह दलबल में उससे अधिक है और वह उसे अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता है । यह तो स्पष्ट लुटेरापन है । शान्तिपूर्वक निवास करते हुए नागरिकों पर यदि कोई डाकू लूट-मार करता है तो उसे घृणित समझा जाता है और वह दोषी ठहराया जाता है तो ज्यों न वह आक्रमणकारी राज्य विश्व-न्यायालय की दृष्टि में डाकू था लुटेरा समझा जाए और तदनुकूल ही उसे दंड दिया जाए ? लोकमत अभी स्पष्ट नहीं हुआ, वरना साम्राज्य-वर्धन एक दंडनीय कार्यवाही मानी जाए । मानवता के पूर्ण विकास में सभी मनुष्यों को अपनी उन्नति करने के पूर्ण अवसर मिलने चाहिए । किसी की उन्नति में कोई अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह बाधा न डाल सके । जब इस प्रकार लोक-मत जागरूक और निश्चित होगा तो संसार में विषमता न रहेगी सभी अपने कर्त्तव्य करते हुए अपने अधिकार स्वच्छन्द और स्वतन्त्ररूप में भोगेंगे । जब तक कि समूचे समाज को उनके जीवन व्यवहार से हानि न हो और सामाजिक जीवन में रुकावट न हो ।

मनुष्य की जीवन-चर्या में दो प्रकार के कार्य करने होते हैं । एक तो स्वास्थ्य और जीवन-निर्वाह के लिए व्यक्तिगत विकास, दूसरे उसका दायित्व समाज के लिए भी है और उसे कोई भी ऐसा कार्य न करना चाहिए जिससे सामाजिक जीवन में संकट की सम्भावना हो । इसीलिए आर्य समाज के नियम नं. १० में कहा है कि ''सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें । अभिप्राय यह है कि व्यक्तित्व का विकास इस प्रकार हो कि सामाजिक जीवन की प्रगति में किसी प्रकार की रुकावट न हो । प्रत्येक व्यक्ति समाज की शक्ति बढ़ाए और समाज द्वारा उसकी भी शक्ति बढ़े । व्यक्ति और समाज का सामंजस्य हो, दोनों का समन्वय हो, दोनों एक-दूसरे के पूरक हों तभी अच्छी उन्नति होती रहेगी और सभी सुखी और समृद्ध होंगे ।

प्रत्येक व्यक्ति समाज के लिए अपने आपको, अपनी सभी शक्ति को समर्पित करे तो उसमें एक विलक्षण ओज आ जाता है, यही ओज ब्रह्मवर्चस कहा जाता है । ब्रह्मवर्चस वह महान् तेज है तो जनार्दन-पूजा से, निःस्वार्थ जन-सेवा से विकसित होता है । तेज, ओज, प्रेम और आनन्द का स्त्रोत मनुष्य के अन्तरात्मा में है जब मनुष्य कर्तव्यरूप से समाज सेवा करता है तो उसका उत्साह बढ़ता है, उसमें आत्मविश्वास स्थिर होता है और वह दृढ़ता से अपने में भरोसा करता हुआ दूसरे जनों में भी विश्वास धारण करता है और इस प्रकार लोकप्रेम होकर सफल होता है । ऐसे समाज में विपुल अन्न, धन, सम्पद हर प्रकार का ऐश्वर्य होता है और जनता में स्वजा, अपने अन्दर से उत्पन्न हुई शक्ति बढ़ती है । शक्तिमान् बुद्धिमान्, ज्ञानवान् मनुष्य ही विनयशील और नमन होता है और उसका विनय उसे जनता के हृदय में स्थायी स्थान देता है और वह उनका हृदय-सम्राट् हो जाता है । यह है धर्मशील होकर नेता बनने की विधि ।

धर्म का मर्म कठिन नहीं है । सीधा, सरल, ऋजुमार्ग धर्म-मार्ग है । उस मार्ग में कठिनाइयाँ आती हैं पर भगवान् पर विश्वास रखने से और आत्म-विश्वास तता आपस के सहयोग से जीवन-मार्ग कल्याण-

पथ के पथिक के लिए अवश्य चलने योग्य हो जाता है । धर्मवीर आर्यजन कठिनाइयों में, दु:खों में और आपत्तियों में घबराते नहीं उन्हें अपने आप में और अपने भगवान् में तथा जनता में विश्वास होता है इसलिए वे सफल होते हैं और भगवान् के दिव्य गुण धारण करते हुए भगवान् का अतिसामीप्य प्राप्त करके अजेय ही जो हैं । धर्म का तत्त्व ऋत और सत्य में निहित है । धर्मशील सदा धैर्यवान् और निष्ठावान् होता है और वह अपने ज्ञान की वृद्धि में ही आनन्द का अनुभव करता है पर कभी अपने ज्ञान-विज्ञान का अभिमान नहीं करता । उसमें अहंकार अवश्य होता है, वह अपने आपको अमर सत्य समझता है और अनुभव करता है सर्वशक्ति के स्त्रोत, पूर्ण भगवान् से अपने आपको जुड़ा हुआ अनुभव करता हुआ नित्य ही उस अक्षय भण्डार 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' महाप्रभु का प्रेमपात्र होकर उससे संयुक्त नित्य नई शक्ति, नया जीवन और नया उत्साह पाता रहता है । वह जनसेवा के दुष्कर-व्रत में सफल होता और सफलता को भी अपने प्रियतम भगवान् को ही समर्पित कर देता है । इस प्रकार धर्मशील मनुष्य विनयशील और नम्र रहता है और सदा विजयी होता है ।

धर्माचरण में अनन्तशक्ति है, विपुल बल है जो बल संयम में है, जो बल सदाचार में है, वह बिलासिता, दुराचार, अनाचार और व्यभिचार में कहाँ ? धर्मशील का आचार व्यवहार आदर्श होता है । उसमें शालीनता और शिष्टाचार तो होता ही है वह सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्ताव करता है और कभी भी केवल अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहता प्रत्युत सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझता हुआ सबकी उन्नति में सहयोग देता रहता है । यही भाव आर्य समाज के नियम नं. ७ और ८ का है ।

ऋषि दयानन्द आर्य समाज द्वारा धर्मशील मनुष्य बनाना चाहता था, उनकी आर्य संज्ञा होती । पर अब बन गए आर्य समाजी, जिनमें प्राय: आर्यत्व में रुचि नहीं देखी जा रही । यह एक दु:खद सत्य है । आर्य समाजी कैसे आर्य होवें, यह समस्या नेताओं के सामने है इसमें उदासीनता हानिकर हो रही है । इस ओर उपेक्षा करना अपने दायित्व को न समझना है । संसार का उपकार करना तो दूर की बात है पहले आर्य समाजी लोग, आर्य समाज के नेता परस्पर एक-दूसरे में सौहार्द और सच्चा प्रेम स्थिर करके आपस की उन्नति ही निश्चित कर ले तो बहु है । आर्यवीर जब आपस का संगठन करेंगे तभी वह संगठन सच्चे अर्थों में आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ आस्तिक जनों का समाज आर्य समाज होगा । ऐसे आर्य समाज में निश्चित रूप से एक दूसरे का कर्तव्यरूप में उपकार करने की क्षमता होगी । हमें आर्य समाज को अविलम्ब सशक्त और सुसंगठित करना चाहिए । यह काम धर्मशील भगवद्-भक्त ही सम्पन्न कर सकेंगे । आर्य समाज में शक्तिमान्, विद्वान्, कर्मण्य, पुरुषार्थी यशस्वी, लोगों की वृद्धि की ओर नेताओं को विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए । धर्मशील आर्यजन ही जनता में शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए योग्य वातावरण तैयार करने में समर्थ होंगे । आर्य समाज द्वारा देश और जाति का कल्याण अवश्य होगा । इस मङ्गल भावना के लिए हुए प्रत्येक आर्य समाज के सदस्य स्वयं धर्मशील ईश्वरभक्त होवें और पड़ोस में अपने जीवन द्वारा आर्यत्व का प्रसार करें तो ऋषि दयानन्द की कामना जो आर्य समाज के नियम नं. ६ में अंकित है, पूरी हो सकेगी ।

आर्य समाज के नेता और जिम्मेदार लोग इस परम आवश्यक कार्य को करें तो आर्य समाज लोकप्रिय होगा और आर्य समाज द्वारा देश, जाति में सदाचार फेलेगा और ईश्वर की सच्ची उपासना द्वारा सभी शक्तिमान् विनयशील और नम्र होते हुए मिलकर इस पर पवित्र कार्य को सम्पन्न कर सकेंगे ।

महर्षि की दूरदर्शिता !

१८७५ में मुम्बई में जब कई उत्साही सज्जनों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के समक्ष नया 'समाज' स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, तब उस दीर्गदृष्टा ऋषि ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए और उन लोगों को सावधान करते हुए कहा-

"भाई हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है । मैं तो वेद के अधीन हूँ और हमारे भारत में पच्चीस कोटि (उस समय की भारत की जनसंख्या) आर्य हैं । कई-कई बात में किसी-किसी में कुछ-कुछ भेद हैं, सो विचार करने से आप ही आप छूट जाएगा ।

मैं संन्यासी हूँ और मेरा कर्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ, इसके बदले जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता रहूँ । मैं कुछ कीर्ति की रागी नहीं हूँ । चाहे कोई मेरी स्तुति करे या निन्दा करे, मैं अपना कर्तव्य समझ के धर्म-बोध कराता हूँ । कोई चाहे माने बा न माने, इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है । ...आप यदि समाज से गुरुपार्थ कर परोपकार कर सकते हैं तो समाज स्थापित कर लो । इसमें मेरी कोई मनाई नहीं है । परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जाएगा ।

मैं तो जैसा अन्य को उपदेश देता हूँ, वेसा ही आपको भी करूँगा और इतना लक्ष्य में रखना कि मेरा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ । इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाए तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इस को भी सुधार लेना । यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक 'मत' (सम्प्रदाय) हो जाएगा और इसी प्रकार से 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़कर नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है, इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा । मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना मतमतान्तर प्रचलित हैं, तो भी वे सब वेदों को मानते हैं । इससे वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी-नाव पुन: मिला देने से धर्म-ऐक्यता होगी और धर्म ऐक्यता से सांसरिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इससे कला-कौशल आदि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थप काम और मोक्ष मिल सकता है । (आर्ष दृष्टि)

अनिवार्य है क्रोध भी पर सन्तुलित और मर्यादित रूप में

-श्री सीताराम गुप्ता

प्रकृति में ही नहीं भौतिक जगत् में भी सर्वत्र पर्याप्त विविधता और विषमता विद्यमान है। रंग-रूप, आर्थिक स्थिति और बौद्धिक स्तर सब में असमानता व्याप्त है। इस विविधता और असमानता के कारण विचारों में भी मतभेद स्वाभाविक है। कई बार यह मतभेद विरोध का रूप ले लेता है तथा विरोध क्रोध के रूप में प्रकट होने लगता है। जैसा कि गीता में लिखा है **'कामात्क्रोधोऽभिजायते'** अर्थात् काम अथवा कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है और

क्रोधाद्भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अर्थात् क्रोध से मूढ़भाव अथवा मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मरण शक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होने से मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है। अतः क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध से बचना अनिवार्य है लेकिन क्या ये सम्भव है ?

जैसा कि कहा गया है **'कामात्क्रोधोऽभि जायते'** अर्थात् काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है लेकिन न तो काम की ही उपेक्षा की जा सकती और न कामनाओं का त्याग ही सम्भव है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ अनिवार्य माने गए हैं। इन्हीं चारों की प्राप्ति के लिए कामनाओं के वशीभूत परिस्थितियाँ भी हमें विवश कर देती हैं क्रोध करने के लिए। बिना क्रोध के कई बार हमारी सही बात को भी कोई सुनने को तैयार नहीं होता लेकिन इस सब के बावजूद क्रोध हानिकारक है। जिस प्रकार धर्म, अर्थ और काम में सन्तुलन अनिवार्य है, काम की एक सीमा निर्धारित है क्रोध की भी एक सीमा अनिवार्य है। घातक क्रोध नहीं अपितु क्रोधाधिक्य है लेकिन क्या हम क्रोध करना जानते हैं ? अरस्तू कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति क्रुध हो सकता है लेकिन सही समय पर, सही मात्रा में, सही स्थान पर, सही उद्देश्य के लिए तथा सही तरीके से क्रुध होना सबके सामर्थ्य की बात नहीं। अरस्तू के इस कथन में ही छुपा है क्रोध का कारण और निवारण।

क्रोध का सीधा सम्बन्ध हमारे मनोभावों से है। एक तरफ जहाँ हमारे मनोभाव क्रोध उत्पन्न करते हैं वहीं क्रोध के कारण मनोभाव दूषित भी हो जाते हैं और दूषित मनोभावों के कारण शरीर रुग्ण तथा बुद्धि विकृत हो जाती है। क्रोध के अनेकानेक कारण हो सकते हैं पर मुख्य कारण है भावों में नकारात्मकता। किसी भी प्रकार की नकारात्मकता ही क्रोध उत्पन्न करती है तथा नकारात्मक भावों अथवा नकारात्मक भावों से उत्पन्न क्रोध के कारण शरीर में घातक रसायनों का उत्सर्जन होता है जो हमारी अनेक शारीरिक व्याधियों के लिए उत्तरदायी है। व्याधियुक्त व्यक्ति चिड़चिड़ा और अधिक क्रोधी हो जाता है। वस्तुतः क्रोध के रूप में मन में व्याप्त नकारात्मक भावों का ही विसर्जन होता है जो अनिवार्य है। क्रोध का उत्पन्न होना और उसका प्रकटीकरण अत्यन्त स्वाभाविक है अतः क्रोध को दबाना भी अत्यन्त घातक है क्योंकि यह अनेकानेक मनोरोगों को जन्म देने वाला है। क्रोध की समाप्ति असम्भव है अतः उसको नियन्त्रित कर उसका रूपान्तरण कर हम उसके घातक प्रभाव से बच कर व्याधिमुक्त जीवन अवश्य व्यतीत कर सकते हैं।

क्रोध का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। यदि इस कारण को समझ लिया जाए तो क्रोध का समाधान सरलता से किया जा सकता है तथा क्रोध आने पर उससे आसानी से निपटा जा सकता है। यदि आप किसी को कोई कार्य सौम्पते हैं और वह आपकी अपेक्षा के अनुसार कार्य नहीं करता अथवा समय पर नहीं करता तो क्रोध स्वाभाविक है लेकिन क्रोध करने से दूसरा व्यक्ति आपकी इच्छानुसार कार्य कर पाए यह ज़रूरी तो नहीं। यहाँ स्थितियों में परिवर्तन करना अनिवार्य है। स्वयं उस कार्य को पूर्ण करने के लिए तत्पर और अग्रसर हो जाइए। कार्य पूर्ण होने जो सन्तुष्टि मिलेगी उससे क्रोध स्वतःसमाप्त हो जाएगा। क्रोध से बचने के लिए या तो असीम धैर्य उत्पन्न कीजिए अथवा दूसरों से अपेक्षा करना छोड़ दीजिए। जो हो रहा है जिस ढंग से हो रहा है उसे स्वीकार कीजिए अथवा स्वयं आगे बढ़कर हर काम को अपने हाथों में ल लीजिए। हर कार्य को स्वयं करना सम्भव नहीं अतः अपने दृष्टि कोण में परिवर्तन अनिवार्य है। जब बाक़ी लोग इन स्थितियों में क्रोधित नहीं होते तो आप क्यों हो रहे हैं ? यह प्रश्न विचारणीय है। इन्ही प्रश्नों के उत्तर में छिपा है क्रोध का समाधान। क्रोध के दुष्प्रभाव से बचने अथवा उसका रूपान्तरण करने के कुछ उपाय देखिए :

- ❑ क्रोध की अवस्था में क्रोध की तीव्रता को यथासम्भव कम करने का प्रयास कीजिए।
- ❑ क्रोध आने की अवस्था में फ़ौरन प्रतिक्रिया न करें अपितु थोड़ा समय बीत जाने दें। इससे क्रोध की तीव्रता भी कम हो जाएगी और कुछ देर बाद आप अपनी बात भी पूरी शिद्दत से सन्तुलित रूप में रख सकेंगे।
- ❑ कई बार हमें पता चल जाता है कि क्रोध आने वाला है और ऐसी स्थिति में हम उसको रोक सकते हैं या कम से कम नियन्त्रित अवश्य कर सकते हैं लेकिन हमारे अन्दर एक भाव ये भी कामकरता है कि यदि इसी समय

उचित उत्तर नहीं दिया गया तो लोग मुझे कमज़ोर समझेंगे । वास्तव में क्रोध करना कमज़ोरी है न कि उसको नियन्त्रित या स्थगित करना । उचित उत्तर वास्तव में क्रोध को नियन्त्रित करके ही दिया जा सकता है ।

❑ क्रकोध आने परस्वयं का अवलोकन करें । क्रोध क्यों उत्पन्न हो रहा है तथा कैसे उत्पन्न हो रहा है और इसका शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसको खोजने का प्रयास करें । इस प्रयास में क्रोध धीरे-धीरे स्वतः समाप्त हो जाएगा । यह क्रोध का रूपान्तरण है । एक नकारात्मक भाव अथवा विकृत मनोभाव को ध्यानावस्था में बदलने की प्रक्रिया है ।

❑ ध्यान को क्रोध के स्थान अथवा वस्तु से हटाकर अन्यत्र ले जाने का प्रयास करें । इसके लिए आँखें बन्द करके पहले खूब गहरे-गहरे सांस लेने और छोड़ने का अभ्यास करें । फिर ध्यान को सांसों के आवागमन का अवलोकन करने पर लगादें और तत्पश्चात किसी ऐसी वस्तु अथवा स्थान पर जो आपको अच्छी लगती हो । यह भी ध्यान द्वारा क्रोध के रूपान्तरण की ही प्रक्रिया है यह ।

❑ क्रोध के दुष्प्रभाव से बचने के लिए क्रोध के स्थान अथवा व्यक्ति से दूर चले जाना भी एक तरीक़ा है । यो तो स्थान बदलें या मन के भाव । मन को क्रोध के उद्गम से दूर अन्यत्र ले जाएँ । क्रोध को किसी व्यक्ति पर उतारने की बजाय किसी भौतिक वस्तु पर उतार दीजिए ।

❑ क्रोध प्रकट करने कर एक तरीका है अवसरानुकूल कोई शेर, दोहा, लोकोक्ति अथवा चुटकुला सुनाना । इससे आपका क्रोध भी शान्त हो जाएगा और अगले पर प्रकट भी ।

❑ क्रोध की अवस्था में पानी पीना, गिनती गिनना या उलटी गिनती गिनना या कोई कविता दोहराना भी अच्छा उपचार है ।

❑ जो व्यक्ति जितना अधिक सर्जनात्मक होगा उतना ही शान्त होगा और शान्त व्यक्ति को क्रोध कहाँ ? स्वयं को व्यस्त रखिए और अपनी सर्जनात्मकता का निरन्तर विकास करते रहिए । नए-नए विषयों और कलाओं पर हाथ आज़माएँ । स्वाध्याय, पठन-पाठन, लेखन, संगीत आदि सब आपके क्रोध को रचनात्मकता में परिवर्तित कर देंगे ।

❑ हास्य में न केवल उपचारक शक्ति होती है अपितु हास्य क्रोध से भी दूर रखता है । क्रोध से बचने के लिए हास्य फ़िल्में देखना, हल्का-फुल्का मनोरन्जक या प्रेरणास्पद साहित्य पढ़ना भी अच्छा है ।

यदि हम ध्यानपूर्व देखें तो सभी उपाय कमोबेश एक ही तत्त्व पर आधारित हैं और वह है ध्यान का परिवर्तन । ध्यान परिवर्तन द्वारा भावों का परिवर्तन और ध्यान का परिवर्तन या भावों का परिवर्तन तभी सम्भव है जब हम शान्त-स्थिर हों और इसके लिए ज़रूरी है व्यायाम और ध्यान-साधना । जितना हम भौतिक रूप से स्वस्थ होंगे उतने ही शान्त-स्थिर रह कर क्रोध के आवेग से बच सकेंगे । शरीर और मन दोनों के स्वस्थ होने पर क्रोध की अधिकता का प्रश्न ही नहीं उठता ।

क्रोध न आना अच्छी बात है पर यदि क्रोध आने पर आप उसे सही रूप में व्यक्त नहीं करते तो यह स्थिति आपके स्वास्थ्य के लिए बेहद ख़राब हो सकती है अतः उचित रीति से क्रोध कीजिए तथा क्रोध प्रकट करने के बाद आप उसे मन से निकाल भी दीजिए अन्यथा यह स्थिति आपके लिए घातक हो सकती है । यदि आपको क्रोध नहीं आता तो यह सात्त्विक अवस्था है । आपको क्रोध आता है और क्रोध आने पर उसे व्यक्त तो करते हैं पर मन में क्रोध का भाव नहीं रहने देते तो ये राजसिक अवस्था है लेकिन यदि क्रोध आने पर उसको प्रकट करें या न करें पर मन से क्रोध के भाव नहीं जाते तो ये तामसिक अवस्था है जो सर्वाधिक घातक है । मन में व्याप्त घातक मनोभाव ही हमारे अनेक रोगों के लिए उत्तरदायी हैं अतः घातक मनोभावों से मुक्ति ही वास्तविक उपचार है । क्रोध जैसे भाव का भी मन में व्याप्त रहना घातक है और इससे मुक्ति उपचार की प्रक्रिया ही है । बहुत ज़रूरी हो तभी क्रोध करें और वह भी बाहरी रूप से लेकिन मन में बिलकुल क्रोध न रखें ।

एक कथा याद आ रही है । किसी गाँव में एक साँप रहता था जो वहाँ से गुजरने वालों को काट लेता था । लोग उससे बहुत भयभीत रहते थे । गाँव के लोगों ने अपनी समस्या एक बुद्धिमान व्यक्ति के सामने रखी । उसने साँप को बुलाकर समझाया तो वह मान गया और उसने लोगों को काटना छोड़ दिया । अब लोग साँप से डरते नहीं थे बल्कि उसके साथ खेलते थे । खेल-खेल में लोगों ने उसके तंग करना शुरू का दिया । कोई उसे अपने गले में डाल लेता तो कोई कोड़े की तरह उससे दूसरे की पिटाई करता । साँप ने अपनी सारी व्यथा कह सुनाई । बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा, "मैंने तुझे काटने के लिए मना किया था न कि फुँफकारने के लिए । किसी को काटना बुरी बात है पर अपने बचाव के लिए फुँफकारना भी ज़रूरी है ।" इसी प्रकार क्रोध कई बार अनिवार्य होता है पर मन में उसकी तीव्रता उचित नहीं । क्रध करो लेकिन उससे स्वयं का या दूसरों का अहित नहीं होना चाहिए । स्वयं का अहित भी बिल्कुल नहीं होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब क्रोध के प्रकटीकरण के बात क्रोध व्यक्ति के मनोभावों में व्याप्त न रहे । मल-मूत्र व अन्य दूषित पदार्थों तथा अन्य विकृत मनोभावों की तरह क्रोध को भी निकाल कर बाहर फेंक देना ही श्रेयस्कर है । मन में इसकी अत्यल्प मात्र भी नुक़्सान ही पहुँचाएगी ।

ఆర్య సమాజ స్థాపన యొక్క ఉద్దేశ్యము

హిందీ మూలం :
శివకుమార్ శాస్త్రి, (ఎం.పి.)

తెలుగు అనువాదం :
ఆచార్య అరవింద శాస్త్రి

సనాతన వైదిక ధర్మము నుద్ధరించుటకు దయానంద సరస్వతి ఆర్య సమాజాన్ని స్థాపించాడు. సమంత వ్యామంతవ్య ప్రకాశములో ప్రారంభమందు ఋషి ఈ విధంగా వ్రాస్తాడు : "సర్వతంత్ర సిద్ధాంతము అనగా సార్వజనిక సామ్రాజ్య ధర్మమును అన్ని కాలాల్లో అందరూ స్వీకరిస్తూ వచ్చారు మరియు భవిష్యత్తులో స్వీకరిస్తారు కూడా. అందుకే దానిని సనాతన నిత్య ధర్మ మంటారు. బ్రహ్మ మొదలుకొని జైమిని ఋషి వరకు అంగీకరించిన ఈశ్వరాది పదార్థము లేవైతే ఉన్నవో వాటిని నేను కూడా అంగీకరిస్తాను. నేను ప్రకాశింపజేసే సామంత వ్యాన్ని సజ్జనులందరి ముందు ఉంచుతు న్నాను. ఏదో ఒక కొత్త కల్పన లేక మత మతాంతరము లను కొనసాగాచే ఉద్దేశ్యము నాకు లేశ మాత్రము కూడా లేదు". కాబట్టి ఋషి యొక్క సమస్త ప్రయత్నములు, ఆ సనాతన ధర్మము యొక్క శుద్ధ స్వరూపమును ప్రజలకు చెప్పాలని వారి తపన. దాని కొరకే వారు ఆర్య సమాజాన్ని స్థాపించారు.

ఋషి యొక్క సమయములో సనాతన ధర్మము యొక్క స్వరూపము అంధ విశ్వాసములు, అర్ధ రహితమైన పరంపరల రూపములో చిక్కుకొని పూర్తిగా గతి శూన్యమై పోయినది. వేదములో సనాతనము యొక్క పరిభాష ఈ విధంగా ఉన్నది :-

"సనాతనమేన మాహురుతాద్యః స్యాత్ పునర్ణవః" సృష్టి ఆరంభము నుండి ఉన్నది, పరిస్థితు లేర్పడినప్పుడు ఆ సమస్యల సమాధానము కొరకు **"పునర్ణవః"** పునః నవః మళ్ళీ కొత్త రూపము ధరించే క్షమత (సామర్థ్యము) కలిగినది సనాతనము అనబడుతుంది. ఏ ధర్మము నేటి సమస్యలకు సమాధానము ఇవ్వలేదో అది నేటి యుగములో జీవించే అధికారము కూడా కోల్పోతుంది. సనాతన ధర్మములో ప్రత్యేక సమస్యను పరిష్కరించ గలిగే సామర్థ్యము ఎల్లప్పుడు ఉండాలి. కాని 100 సంవత్సరాల పూర్వము ఈ సనాత ధర్మము యొక్క స్వరూపమెట్లుండెను? మరి దాని యొక్క ఈ స్వరూపము ఎప్పుడి నుండి వికృతమైనది ? దాని కొరకు మేము ఖ్యాతి గాంచిన వారి గ్రంథముల యొక్క సూచిన మీ ముందుంచుతున్నాము. దీని వలన ఆకాలములో సనాతన ధర్మము యొక్క రూపమెట్లుండెనో సరళంగా అర్థమగుతుంది.

ముస్లిముల ఆక్రమణ కాలంలో ఈ దేశంలో గొప్ప-గొప్ప దిగ్గజ ధార్మిక విద్వాంసులు ఉండిరి. ఆ సమయంలో కూడా అనేకులు శాస్త్రములు, స్మృతి గ్రంథము రచన మరియు భాష్యములు వ్రాయుటలో నిమగ్నమై ఉండిరి. దేశమును సంకటములు చుట్టుముట్టి నప్పుడు వారికి వాటితో పనిలేక పోయెది. వారు దానిని పట్టించుకునే వారు కారు. వారికి కేవలము పరలోక సాధనలోనే నిమిత్త ముండెడిది. ఎలాగంటే... మేధాతిథి 9వ శతాబ్దాములో మిథిలలో జన్మించారు. వారు మేధాతిథి భాష్యాన్ని వ్రాసారు. విజ్ఞానేశ్వర్ 11వ శతాబ్దములో కళ్యాణ్ వేదార్‌లో జన్మించారు. వారు "మితాక్షర"ను రచించారు. లక్ష్మీధర్ 12వ శతాబ్దములో కన్నౌజ్‌లో జన్మించారు. వారు స్మృతి కల్పతరు అనే గ్రంథాన్ని వ్రాసారు. 12వ శతాబ్దపు చివరలో హలాయుదుడు జన్మించాడు. అతడు బ్రాహ్మణ సర్వస్వమును రచించాడు. వీరి సమకాలికులే దక్షిణములో దేవబట్టు "స్మృతి చంద్రిక"ను వ్రాసాడు. 13వ శతాబ్దపు ఉత్తరార్ధములో దేవగిరిలో జన్మించారు. వీరు "చతుర్వర్గ చింతామణి" అనే పుస్తకాని రచించారు. 10వ శతాబ్దపు చివరలో కాశీలో కుల్లుక బట్టు ఉండేవాడు. అతడు "మన్వర్థ ముక్తావళి" పేరుతో మనుస్మృతిపై ప్రామాణిక టీక వ్రాసారు. 13వ శతాబ్దపు చివరలో మిథిలలో మిత్రోదయుడుతన పేరు తోనే ఒక గ్రంథము వ్రాసాడు. 14వ శతాబ్దములో మాధవాచార్యుడు విజయనగరంలో ఉన్నారు. వీరు "పరాశర మాధవమ్" గ్రంథాన్ని వాసారు. 11వ శతాబ్దపు నీలకంఠ్ అనే విద్వాంసుడు కోంకణ ప్రాంతంలో "మయూఖ" నామక గ్రంథాన్ని రచించాడు. 14వ శతాబ్దపు అంతములో కాశ్మీర్‌లో అపరార్కుడు తన పేరుతోనే మహత్వ పూర్ణ గ్రంథాన్ని రచించాడు. ఇతని కాలంలోనే బెంగాల్‌లో చండేశ్వరుడు "స్మృతి రత్నాకరము" రచించాడు. అదే సమయంలో బెంగాల్ ప్రాంతములో జీమూత వాహనుడు "ధర్మ రత్నము" రచించాడు. 16వ శతాబ్దములో బెంగాల్‌లో రఘునందనుడు "స్మృతి తత్వము" రచించాడు. అదే సమయంలో కాశీలో కమలాకర్ "నిర్ణయ సింధు" వ్రాసాడు. 17వ శతాబ్దములో కాశీలో రెండవ నీలకంఠుడు "భగవంత్ భాస్కర్" గ్రంథాన్ని వ్రాసాడు.

వీరి గ్రంథాలలో కొన్నింటికి మంచి ఆదరణ లభించినది. విద్వత్త దృష్టి కోణములో మేధా తిథి భాష్యమునకు చాలా ప్రశంస లభించింది. విజ్ఞానేశ్వరుని "మితాక్షర" మహారాష్ట్రలో హిందూ చట్టము రూపములో వ్యవహారంలో ఉండింది. చతుర్వర్గ చింతామణిలో హేమాద్రి గారు దానము, తార్థము మరియు మోక్షము వంటి విషయములో వచనాలను సంగ్రహించారు. కుల్లుక బట్టుని మనుస్మృతి టీకా సర్వాధిక ప్రసిద్ధమైనది. మాదవాచార్యుని "పరాశర మాధవునకు" స్మృతి కంటే ఎక్కువ ఆదరణ లభించినది.

కాని ఏ గ్రంథకారుడు కూడా యవనుల (ముస్లిముల) అత్యాచారముల వలన దేశములో సంభవించిన హాహాకారముల వర్ణన చేయ లేదు. అటువైపు ధ్యానము కూడా ఇవ్వ లేదు. ఏ కారణాల వల్ల, దోషాల వల్ల దేశము దేశము నష్ట, భ్రష్టమైనదో ప్రజలకు తెలుపుతూ అటువైపు వారి ధ్యానము నాకర్షించినచో బాగుండేది. ఇతర విద్వాంసుల విషయమును వదిలి పెట్టండి, అసలు ఆచార్య శంకరులు కూడా ఇటువైపు తన దృష్టి సారించ లేదు. శ్రీ శంకరాచార్యుల వారి జన్మమువారి శిష్యుల మతానుసారము-

నిధి భాగే భవన్ హయబ్దే, విభవే మాసి మాధవే।
శుక్లె తిథౌ దశమ్యాంచ ।
శంకరాచార్యో దయః స్మృతః ॥

అనగా కలియుగము యొక్క 3886 సంవత్సరములో విభు నామ సంవత్సరములో శుక్ల దశమి నాడు శంకరాచార్యుడు జన్మించాడు. ఈ లెక్క ననుసరించి ఆ సమయమున విక్రమ సంవత్ 845, శక సంవత్ 710, క్రీ.శ. 788 అయి ఉండెను. ఇదే విషయంలో

శంకర మందార సౌరభములో శ్రీ కంఠబట్టు ఈ విధంగా వ్రాస్తాడు–

**ప్రాసూత తిశ్య శరదార్మా మయాత వత్యామ్ ।
ఏకాద శాధిక శతేన చతుః సహస్త్రయామ్ ॥**

అనగా 111 తగ్గించి 4 వేల సంవత్సరము కలియుగము గడచిన తరువాత శంకరా చార్యుడు జన్మించాడు. ఈ లెక్కనను సరించి కూడా అదే సంవత్, క్రీస్తు శకము సరిపో తుంది. ఇక ఇతిహాసముపై దృష్టి సారించినచో క్రీ.శ. 712లో మహమ్మద్ బిన్ కాసిమ్ సింధు దేశపు రాజైన రాజా దాహర్‌పై ఆక్రమణ చేసి అధికారము కైవసముచేసికొని ముల్తాన్ వరకు దోచుకొని చాలా హింసాత్మక చర్యలు కావించి నాడు. అంతేగాక ముల్తాన్‌లోని సూర్య మందిరాన్ని కూడా ధ్వంసము చేశాడు. ఇక ఆచార్య శంకరునికి తనకంటే 75 సంవత్సర ములకు ముందు అనంభవము. ఆశ్చర్య కరమైన విషయమేమనగా అప్పటి ఆచార్యులు కూపమండూకులై (బావిలో కప్పల మాదిరిగా) దేశము యొక్క వర్తమాన పరిస్థితిని ఏ విధంగా సవరించాలి అనే విషయం పట్ల ఏమాత్రము ధ్యానము లేదు ? హిందువుల అస్పృశ్యత, స్త్రీల పట్ల హీనదృష్టి కలిగియుండు భావనను శంకరుల వారుకూడా అప్పుడు ప్రచలితమైయున్న రూఢి వాద వాదమును సమర్థించాడు. శూద్రుల విషయంలో వేద మును చదివే, వినే అధికారము ఎవరికు న్నది ? ఎవరికి లేదు అనే ఈ ప్రసంగ వివే చన యొక్క "శ్రవణాధ్యయన ప్రతి షేధాత్ స్మృలేశ్చ" అనే ఈ సూత్రముపై తన భావాలను ఇలా వ్రాస్తాడు–

"**అథాస్య వేదము పశృణ్వతస్త్రపు జతుభ్యామ్ శ్రోత్ర ప్రతి పూరణమ్ ఉచ్చారణే జిహ్వా భేదః ధారణే శరీర భేదః** ॥ అనగా ఒకవేళ శూద్రులు వేదమును వింటే సీసము మరియు లక్క కరిగించి వారి చెవులలో పోయ వలెను. ఒకవేళ ఉచరిస్తే నాలుక తెగగొట్ట వలెను ఇంకా వేదానుసారము వ్రత ధారణ చేసినచో శరీరాన్ని చీల్చి వేయ వలెను. అదే విధంగా స్త్రీల విషయంలో కూడా అప్పటి విద్యాహీనత వల్ల దూషితమైన భావజాలం ప్రవహిస్తుండేది. ఆచార్యుడు దీనినే ప్రబలంగా సమర్థించాడు. ఉదాహరణకు ఆచార్యుల ప్రశ్నోత్తరిని చూడండి–

1. ద్వారం కమేకం నరకస్య–నారీ।
2. విజ్ఞాన మహావిజ్ఞతమోస్తికోవా ? నార్యాపిశాచ్యానచ వంచితోయః।
3. కౌశృంఖలా ప్రాణామృతామ్ ? స్త్రీ।
4. విశ్వాసపాత్రం నకిమస్తి ? నారీ।
5. కింత ద్వివశం భాంతి సుధోపమం యత్ ? స్త్రీ।

అనగా (ప్రశ్న) నరకము యొక్క ముఖ్య ద్వారము ఏది ?

జ) స్త్రీ. (ప్ర.) జ్ఞాను లలో మహాజ్ఞాను లెవరు ? ఎవరినైతే వేశ్యా స్త్రీ మోసము చేయలేదో.

(ప్ర) ప్రాణులను బంధించే సంకెళ్ళు ఏవి ?

జ) స్త్రీ.

(ప్ర.) విశ్వాస యోగ్యులు కాని వారెవరు ?

జ) స్త్రీ.

(ప్ర) ఏ విషము మనకు అమృతము అని పిస్తుంది ?

జ) స్త్రీ.

ఇదీ స్త్రీ విషయంలో కుళ్ళిపోయిన భావన. ఇంత వివేచన తరువాత తేలేదేమంటే వైదిక ధర్మము యొక్క స్వరూపము ఎంత వికృతంగా మారినదో ? అందరి కన్నులు పరలోకంపై ఉన్నవి. ఈ లోకంలో ఏమిజరుగుతుంది ? దీనితో ఎవరికీ సంబంధం లేదా ? అట్లు కానిచో మేధాతిథి వ్రాసిన బృహత్ భాష్యంలో బలాత్కారము చేయబడి భ్రష్టమైన స్త్రీ మరియు బలవంతముగా ధర్మ భ్రష్టము చేయబడిన పురుషుల యొక్క శుద్ధి గురించి ఆలోచించిన బాగుండెడిది. ఎందుకనగా మేదాతిథి కాసిమ్ కంటే 100 సంవత్సరముల తరువాతి వాడు. అప్పుడు హిందూ సమాజములో ఘోరమైన సంకట స్థితి వ్యాపించి యుండెను. విజయ నగర సామ్రాజ్యము యొక్క మంత్రి గారి గ్రంథములలో అప్పటి పరిస్థితుల యొక్క వివేచన జరిగి యుండవలసినది.

ఋషి దయానందుల వారు తన దివ్య దృష్టితో ఈ పూర్తి రోగాన్ని పరీక్షించారు. వేదము మరియు శాస్త్రముల ఆధారంగా శుద్ధ సనాతన వైదిక ధర్మాన్ని నిరూపించారు. ఆ వేదిక ధర్మ నిరంతర ప్రచారము కొరకు ఆర్య సమాజాన్ని స్థాపించారు.

మృత ప్రాయమైన సనాతన ధర్మములో జీవము నింపుటకై ఋషి క్రింది ఉపాయ ములు చేసారు.

1. ఆ సమయంలో మతమతాంతరముల ప్రపంచంలో తర్కమునకు స్థానము లేకుండెను. మతములో బుద్ధికి, తర్కానికి స్థానము లేకుండెను. ఋషి ఉదహరించిన ప్రకారము యస్తర్కోణాను సందత్తే సధర్మ వేద నేతరః (మనుః) తర్కము లేకుండా ధర్మము తెలియబడదు.
2. వేదాదేశము ననుసరించి మనుష్య మాత్రు నకు వేదము చదివే అధికారము నిచ్చాడు.
3. స్త్రీ జాతి యొక్క పూర్ణ గౌరవ ప్రదమైన స్థానాన్ని ఇచ్చారు మరియు ఆమెను సంతానము యొక్క ప్రథమ గురువుగా గుర్తించారు.
4. జాతి వాదమును ఖండించి వర్ణ వ్యవస్థను పునరుద్ధరించారు.
5. మానవుని సర్వాంగీణ వికాసము కొరకు ఆశ్రమ ప్రణాళికను పునరుద్ధరించారు.
6. కల్పిత దేవీ దేవతల పూజను ఖండించి వాస్తవికమైన ఆరాధ్య ఈశ్వరుని స్వరూపాన్ని తెలిపారు.
7. సమస్త సత్య విద్యలకు మూలమైన వేదాల యొక్క శుద్ధి అర్థము దానిని అర్థము చేసుకొనుటకు అవసరమైన ప్రాచీన ప్రక్రియను ఉద్ధరించారు.
8. ప్రచలిత మత మతాంతరములను బాగా పరీక్షించి అందరూ వైదిక మతమును స్వీకరించాలని ప్రస్తావించారు.
9. విదేశీ దాస్యతను నిరసించి స్వరాజ్యము వైపు ప్రజలను ప్రేరేపించారు.
10. వ్యవసాయము మరియు భౌతిక సమృద్ధి కొరకు గోరక్షణ గురించి విశేష ప్రయత్నము చేశారు.
11. ఇతర మతములను అవలంబించిన వారిని శుద్ధి చేసి వైదిక ధర్మములో దీక్షితులగుటకు తలుపులు తెరిచారు.
12. నవీన వేదాంతులు చెప్తే సంసార మిథ్యత్వము (సంసారము మాయ) అనే కల్పనకు ఖండించి "ప్రపంచము సత్యమైనది. తన ఉదాత్త ఆచరణతో ఉత్తములు కావలెను మరియు ఈలోకములో ధార్మికులై పరలోక సాధనకు ప్రయత్నించాలి" అని ప్రబోధించారు.
13. బ్రహ్మ సమాజీకులు గుడ్డిగా పాశ్చాత్య దేశములను అనుకరించి మన ఋషులకు హీనమైన వారుగా భావించుటను ఖండించారు.

ఈ విధంగా సమాజములోని అన్ని లోటు పాట్లను సవరించి వేదోక్త ప్రపంచాన్ని నిర్మించుటకు స్వామి దయానందుల వారు ఆర్య సమాజమును స్థాపించారు.

మృత్యువు నిశ్చితమా ? అనిశ్చితమా ?

హిందీ మూలం :
స్వామి ఇంద్రవేశ్ జి

తెలుగు అనువాదము :
ఆచార్య అరవింద శాస్త్రి

మృత్యువు ! మృత్యువు మనుష్యునకు ఎల్లప్పుడు ఒక సవాల్‌గా, ఒక ప్రశ్న చిహ్నంగా, ఒక విడివడని చిక్కు ముడి, ఒక సింధిగ్ధ స్థితిగా నిలిచి యున్నది. దీని యొక్క జవాబును తెలుసుకోవాలనే జిజ్ఞాస అతనికి ఎల్లప్పుడు ఉంది. నడుస్తూ-నడుస్తూ తింటూ తాగుతూ, మాట్లాడుతూ-మాట్లాడుతూ మనుష్యుడు ఉన్నట్టుండి సమాప్తమవడం ఎట్లా జరుగుతుంది ! కార్యకలాపాలు, అన్ని ఆలోచనలు ఏ విధంగా శూన్య మవుతాయి ? శూన్యత కూడా ఎలాగంటే తిరిగి శరీర కదలిక కూడా స్థంభించి పోతుంది. అన్ని బంధాలు, అనుబంధాలు, ధన-సంపదలు ఉన్నవి ఉన్నట్లుగా ఇక్కడే పడి ఉంటాయి. మరి వెళ్ళే వాని వెంట ఎవరు వెళ్తారు ?

ధనాని భూమౌ పశ్వశ్చ గోష్ఠే,
భార్యా గృహద్వారే జనాః శ్మశానే ।
దేహశ్చితాయాం పరలోక మార్గే,
కర్మాను గోగచ్ఛతి జీవ ఏకః ॥

ధనము భూమిపై పడి ఉంటుంది. పశువులు పశువుల కొట్టంలో కట్టి వేయబడి ఉంటాయి. భార్య ఇంటి తలుపు వరకు వెళ్తుంది. ప్రజలు శ్మశానము వరకు వెళ్తారు. శరీరము చితాగ్ని వరకే ఉంటుంది. జీవుని వెంట మాత్రము అతని మంచి-చెడుకర్మలు మాత్రమే వెళ్తాయి.

ఈశ్వరుడు మానవునికి జ్ఞాపకశక్తితో పాటు మరచి పోయే శక్తిని కూడా ఇచ్చాడు. మనుష్యునకు కఠోరమైన కష్టాలు వస్తాయి, భయంకర రోగాల పాలవుతాడు, కొద్ది సేపు అతడు వాటన్నిటినీ మరచి పోతాడు. కాని తన సురక్ష కొరకే పగలు-రాత్రి ఒక చోట పడి యుండుట లేక మృత్యువును మరచి పోవుటకు ముఖమును వేరొక వైపునకు తిప్పు కొనుట లేక ఈశ్వరుని మరచి పోవు శక్తిపైన ఆధారపడి యుండుటయే మృత్యు భయము నుండి తప్పించుకొనే ఉపాయమా ? ఘటనలు మరచి పోతాము కూడా, మరచి పోము కూడా మరచి పోకుంటే ఉపాయమేమిటి ?

వైదిక సిద్ధాంతము ననుసరించి మృత్యువు యొక్క అస్తిత్వమే లేదు. ఇదొక మిథ్యా ఆలోచన. మరచి పోతే పోయేది కాదది. కాని వాస్తవిక స్వరూపమును అర్థం చేసుకుంటే అది స్వయంగా సమసి పోతుంది. మృత్యువు యొక్క వాస్తవిక స్వరూపమును అర్థము చేసుకొనుటకు, మృత్యువు ఎవరికి కలుగుతుంది ? అనే విషయాన్ని గ్రహించాలి. మృత్యువు శరీరానికి కలుగుతుందా ? అనే విషయాన్ని గ్రహించాలి. మృత్యువు ఎవరికి కలుగు తుంది ? అనే విషయాన్ని గ్రహించాలి. మృత్యువు శరీరానికి కలుగుతుందా ? లేక ఆత్మకా ? దర్శనాలలో మనము శరీరము మరియు ఆత్మ అని రెండు తత్వాల గురించి చదువుతాము. శరీరముతో నేరుగా ఆత్మ స్వతంత్ర సత్తా కలిగి యున్నది. జన్మ శరీరా నికి కలుగుతుంది. మృత్యువు కూడా శరీరా నికే కలుగుతుంది. ఆత్మ కేవలము శరీరాన్ని ధరిస్తుంది.

ఆత్మకు మృత్యువు కలుగదు. కేవలము శరీరానికే కలుగుతుంది. ఇది కేవలము నోటి మాట కాదు. శరీరము చావడము, ఆత్మ అమరమగుటను ఈ ప్రపంచములో చూసిన వాళ్ళున్నారు. శరీరము నశించింది. నేను నశించ లేదు అని వారు అనుభవ పూర్వకముగా గ్రహించారు. భగత్ సింగ్ ఉరితాడు దగ్గరికి సమీపిస్తున్నప్పుడు అతని ముఖము ఉజ్వలముగా వెలిగి పోతుంది. అతని బరువు పెరిగింది. అతని లోపల ఉన్న ఏదో ఒక శక్తి అతనికి ఇలా స్ఫూర్తినిస్తుంది. "ఈ శరీరము ఉరికంబమెక్కు తుంది. ఆత్మ అమర మవుతుంది". రాంప్రసాద్ బిస్మిల్‌కు ఉరిశిక్ష వేసినపుడు అతడు నవ్వుతూ ఆ ఉరితాడును తన మెడలో వేసుకొని ఊయలూగాడు, ఇంకా వెళ్తూ వెళ్తూ ఏమని చెప్పాడంటే "నేను త్వరలోనే ఏదో ఒక దగ్గరి బంధువు ఇంట్లో జన్మించి తిరిగి ఈ భూమి పైకి వస్తాను". బిస్మిల్ యొక్క ఈ వచనాలు ఆత్మ యొక్క అమరత్వాన్ని సిద్ధింపజేస్తాయి. ఋషి దయానందునకు విషమివ్వబడింది. విషముతో రోమ రోమములో అగ్గి రాజుకుంది, కాని చనిపోతూ అతని ముఖముపై వెలిగే ఉజ్వల కాంతిని దర్శించి నాస్తిక గురుదత్తుడు ఆస్తికుడైనాడు. సోక్రటీస్‌కు తాగటానికి విష పాత్ర ఇవ్వబడింది. అతడు తాగేసాడు. మెల్ల మెల్లగా అతని శరీరంలో విషము వ్యాపించ సాగింది. శిష్యులను తన వద్దకు పిలుచుకొని అతడు ఈ విధంగా చెప్పాడు- "చూడండి ! నా కాళ్ళు చచ్చు బడ్డాయి, కాని నేను చావ లేదు, ఇప్పుడు నా మొండెము చచ్చుబడింది, కాని నేను చావలేదు, నా చేతులు చచ్చాయి, నేను చావలేదు. నా శరీరము చావబోతోంది కాని నేను చావను.

మొఘల్ వంశము యొక్క రాజు అక్బర్ యొక్క సైన్యం 1567లో చిత్తౌడ్‌పై దాడి చేశాయి. ఆ సమయంలో రాణాప్రతాప్ యొక్క తండ్రి ఉదయ్‌సింగ్ అక్కడి రాజుగా నుండెను. అతడు గాభరా చెంది చిత్తౌడ్‌ను రక్షించే కార్యాన్ని జైమల్ల మరియు ఫత్తా చేతిలో ఉంచి పారిపోయాడు. జైమల్ల, ఫత్తాతో పాటు ప్రాణాలకు తెగించి చిత్తౌడ్‌ఘడ్ వీరసైనికులు కాషాయపు తలపాగాలను ధరించి తమ భూమిని రక్షిస్తూ వీరమరణాన్ని పొందారు. కోటలో నున్న స్త్రీలందరూ సతీసహగమనము (జౌహర్) చేస్తూ భీకరమైన అగ్ని కొలలకు బలై మరణించారు.

ఈ శరీరము నష్టమైతే దానిలో ఉన్న చేతన శక్తి కూడా నశించి పోతుందనే వారు చెప్పేది సత్యము కాదు. మనుష్యుడు జీవితము లోకి ఎందుకు వచ్చాడు ? ఏమి ఇలాగే పై నుండి ఊడి పడ్డాడా ? "ఇలాగే ఊడి పడడం" అనే పేరుగల ఒక వస్తువు ఈ ప్రపంచంలో లేదు. ప్రతి వస్తువు ఒక లక్ష్యాన్ని పూర్తి చేయుటకు పుట్టినది. ఆ లక్ష్య పూర్తికై క్రియాశీలమై ఉన్నది. కుమ్మరి వాడు కుండ తయారు చేస్తాడు. కుండ పగలిపోతే కుమ్మరి వాడు చావడు. గడియారము యొక్క లోపలి భాగాలు చెడిపోయినచో గడియారము

తయారు చేసే వాడు చనిపోడు. కుండ పగిలిపోతే కుమ్మరి వరొక కుండను తయారు చేస్తాడు. ఒక గడియారము పనికి రాకుండా పోతే వేరే గడియారాన్ని సరి చేయడం మొదలు పెడతాడు. అదే విధంగా శరీరము మనలను విడిచి వెళ్ళి పోతే ఆత్మ వేరే శరీరాన్ని ధరించుకొంటుంది. కాబట్టి మృత్యువు యొక్క మారు పేరు రూపాంతరణము అనబడుతుంది.

ప్రపంచములో ఏ వస్తువైనా పూర్తిగా నాశనము కాదు. దాని రూపము మారి పోతూ ఉంటుంది. ఏ వస్తువైనా పూర్తిగా నష్టము కాదు, అది రూపాంతరము చెందుతుంది అనేది విజ్ఞానము యొక్క మూల సిద్ధాంతము. మేఘాల నుండి వర్షము పడుతుంది. అది పారుతూ నది రూపంగా మారుతుంది. నది సముద్రంలో కలుస్తుంది. సూర్యుని వేడి ద్వారా సముద్రపు నీరు ఆవిరిగా మారి తిరిగి మేఘాలు తయారవుతాయి. అవి తిరిగి వర్షిస్తాయి. ఈ ప్రక్రియలో వర్షపు బిందువులు నశించాయని చెప్తాము. నది ప్రవహించి సముద్రములో కలిసినప్పుడు నది సమాప్త మైనదని చెప్తాము. నదిలో బిందువులు ఇమిడి ఉన్నాయి. సముద్రములో నది ఇమిడి యున్నది. నష్టము ఏదీ కాదు. అన్నీ అలాగే ఉంటాయి కాని రూపాలు మారుతాయి. సరిగ్గా ఇదే విధంగా మనము ఏదైతే శరీరము నష్టమైనదని చెప్తామో అది మృత్యువు అనబడు తుంది. అంటే శరీర తత్వముల యొక్క రూపము మారుట అని అర్థము. శరీరము పంచతత్వములతో ఏర్పడినది. సమయము వచ్చినప్పుడు ఈ ఐదు తత్వములు-పృధివీ తత్వము మట్టిలో, జలీయ తత్వము నీటిలో, ఆగ్నేయ తత్వము అగ్నిలో వాయవీయ తత్వము గాలిలోకి వెళ్ళి పోతాయి. శరీరము పరమాణువుల సంయోగము చేత ఏర్పడినది. అందుకే మృత్యు సమయంలో పరమాణువుల సంయోగము విడిపోతూ ఉంటుంది. అనగా వియోగము జరుగుతుంది. పరమాణువులు నశించవు. చేతన తత్వము మాత్రము పరమా ణువుల కలయికతో ఏర్పడ లేదు. మృత్యు సమయంలో చేతనమునకు ఆత్మకు ఏమి జరుగుతుంది ? ఎప్పుడైతే శరీరమే నష్టము కానప్పుడు, అది కూడా పరమాణువుల రూపంలో స్థితమై ఉంటుందో ఈ దృష్టిలో పరమాణువుల రూపంలో శరీరము కూడా నిత్యమే. అది కూడా అమరమైనదే. అలాంట ప్పుడు చేతన తత్వమైన ఆత్మ గురించి చెప్ప వలసింది ఏమున్నది ? ఏ విధంగా శరీరము యొక్క రూపాంతరణము జరుగుతుందో ఆత్మ యొక్క రూపాంతరణము కూడా జరుగు తుంది. అది ఒక శరీరమును విడిచి ఇంకొక శరీరాన్ని ధరిస్తుంది. శరీర రూపాంతరణము "మృత్యువు" అనబడుతుంది. ఆత్మ యొక్క రూపాంతరణము "పునర్జన్మ" అనబడుతుంది.

అయినప్పటికీ ఒక బాలుడు చీకటిలోకి ప్రవేశించినప్పుడు ఎంత భయపడతాడో, మనుష్యుడు కూడా మృత్యువుతో అలాగే భయపడతాడు. మనుష్యుడు చావు భయంతో బ్రతుకుతూ ఉంటాడు. బహుశా ఏ భయము కూడా మృత్యువు కంటే ఎక్కువ భయంకరమైనది కాదు. అందుకే దీనిని "అభినివేశ-క్లేషము" అంటారు. మృత్యువు భయాన్ని జయిస్తే అతడు అన్ని భయాలపై విజయం సాధించినట్లే. ప్రతినిత్యము మన సమక్షములో జరిగే మృత్యువును చూస్తూ కూడా మన మృత్యువుపై మనకు నమ్మకం కలుగదు, మనము స్థిరంగా జీవించే ప్రయత్నము చేస్తాము. "శరీరమనే ఈ వస్తు 100 సంవత్సరాల ఆయువు గలది, కాని క్షణ మాత్రములో ఏమి జరుగుతుంది కూడా సూచన లేనిది". యక్షుడు యుధిష్ఠిరున్ని ఈ విధంగా ప్రశ్నిస్తాడు "ఎన్నిటికంటే గొప్ప ఆశ్చర్యమేమిటి" అని అడిగితే యుధిష్ఠిరుడు ఈ విధంగా జవాబిస్తాడు.

అహన్యహని భూతాని
గచ్ఛంతియమమందిరమ్ ।
శేషాః స్థావరమిచ్ఛన్తి కిమాశ్చరమతః పరమ్॥

ప్రతి దినము జీవుడు మృత్యువుకు బలియైతాడు. కాని మనుష్యుడు మాత్రము స్థిరత్వాని కోరుకొంటాడు. దీనికంటే మించిన ఆశ్చర్యమేముంది ?

మనుష్యుని శరీరము యొక్క అంతము ఏదో ఒక రోజు నిశ్చితముగా జరుగుతుంది. దీని నెవరూ ఆపలేరు. ఎలాగైతే వృక్షము నుండి రాలిపోయిన ఆకు తిరిగి కొమ్మకు అతుక్కోదో అదే విధంగా శరీరం నుండి విడిపోయిన ఆత్మ తిరిగి అదే శరీరంలోకి ప్రవేశించే దైవికమైన లేక మానుషికమైన ఎలాంటి విధి ప్రపంచములో లేదు. ఇదే ప్రపంచము యొక్క రీతి.

ఇక మృత్యువు నిశ్చితమా లేక అనిశ్చితమా ? అనే ప్రశ్న ఉదయిస్తుంది. మనుష్యుడు కర్మ చేయడంలో స్వతంత్రుడు. కర్మఫల మును పొందుటలో పరతంత్రుడు. మృత్యువు కర్మ కాదు. కర్మ ఫలము. ఈశ్వర వ్యవస్థను అనుసరించి యే అతని కర్మకు ఫలము లభిస్తుంది. ఎందుకనగా వ్యక్తి మరణించే కర్మ మాత్రము చేయగలుగుతాడు. కాని అతడు మరణిస్తాడనే విషయము నిశ్చితము కాదు. ఈశ్వరుని జ్ఞానములో మృత్యువు నిశ్చితము. ఈ నిశ్చితమైన మృత్యువుకు నిమిత్తములైన కారణ లేవైనా ఉండవచ్చు. రోగము, గాయము, యుద్ధము లేక వేరెవరైనా ప్రాణి నిమిత్త కారణము కావచ్చును.

పిల్లలు, యువకులు, వృద్ధులు మరియు గర్భములో ఉన్న శిశువులలో మృత్యువు అవశ్యము సంభవిస్తుంది.

"జీవనము-మృత్యువుల మధ్య ఒక శ్వాస దూరము మాత్రమే ఉన్నది. అది ఎప్పటి వరకు ఉంటుందో ఎప్పుడు పోతుందో ఎవరికీ అంతుపట్టదు". -మనుస్మృతి 5/106

జలముతో బాహ్య శుద్ధి, సత్యాచారముతో మనస్సు యొక్క శుద్ధి, జ్ఞానముతో బుద్ధి యొక్క శుద్ధి, విద్యా మరియు తపస్సుచే సమస్త ప్రాణుల శుద్ధి జరుగుతుంది.

ప్రతి వ్యక్తి ఐదు మహాశక్తులతో విభూషితుడై ఉంటాడు. 1) శారీరిక బలము Bodily strength) 2) ఇచ్ఛాశక్తి లేక మనోబలము (Will Power or Mental Strength), 3) వివేక శక్తి లేక బుద్ధి బలము (Power of discrimination or strength of intellect), 4) సంప్రేషణ శక్తి లేక వాగ్బలము (Power of speech or communicative strength) ఇంకా 5) ఆత్మశక్తి లేక ఆత్మబలము (Power of self or spiritual strength). ఈ శక్తులను

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-01-2025 REGISTERED-REGD. No. D/RNP/HCD-783/2024-26 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040-24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ

To,
Editor, Arya Sandesh
.5 Hanuman Road,
New Delhi-110001

विनम्र श्रद्धांजलि

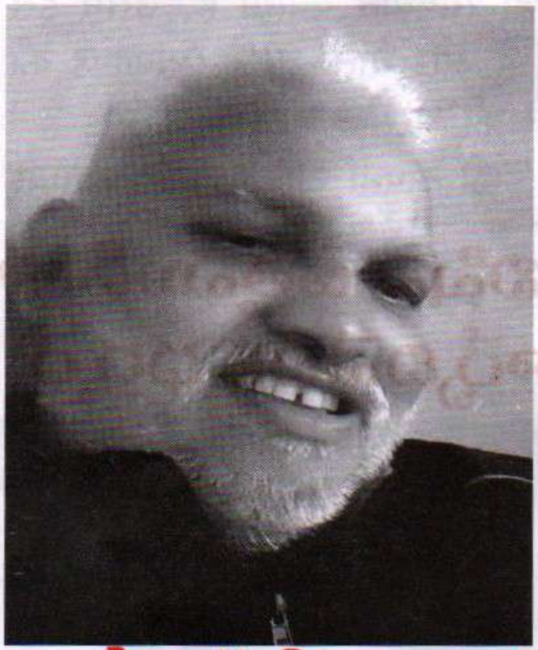

!! महाशोक !! विनम्र श्रद्धांजलि ।

अत्यन्त दुख के साथ सूचित किया जाता है कि आचार्य दयासागर जी हमारे मध्य नही रहे । दयानन्द सेवा आश्रम थांदला मध्यप्रदेश के संचालक, कुशलगढ में आज ही सम्पन्न हुए सनातन धर्म रक्षा महासम्मेलन के यशस्वी, कुशल संयोजक आचार्य दयासागर जी का आज कार्यक्रम के पश्चात्‌ स्वास्थ्य बिगडा, कुशलगढ में होस्पीटल में ले गये, किन्तु स्वास्थ्य अधिक खराब होने के कारण डाक्टर ने बडे होस्पीटल में ले जाने के लिए रेफर किया, कुशलगढ से बांसवाडा के रास्ते में मध्य रात्रि में उनका देहान्त हो गया है । वे विगत कुछ दिनों से रुग्ण थे, आज सुबह भी डाक्टर ने उनको दवाई की बोटल आदि चढाई थी, उसके बाद ही वे का कार्यक्रम स्थल पर आये थे। आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।- **विट्ठल राव आर्य प्रधान, हरिकिशन वेदालंकर मंत्री सभा और समस्त अधिकारी गण**

आदि में पड़ जाता है । पारसियों की पवित्र पुस्तकों में वेद मन्त्रों या वेद के देवताओं का वर्णन है । इससे पता चलता है कि प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रभाव ईरान में पाए जाते थे । परन्तु साथ ही साथ इसका भी पता चलता है कि आवागमन का सम्बन्ध टूट-सा गया था । यदि उस काल में ईरान और भारत में वही सम्बन्ध होता जो महाभारत काल में जबकि ईरान के राजाओं ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था तो सम्भव है जर्तुश्त को नवीन धर्म चलाने की आवश्यकता न पड़ती । यह तो हुई भारत वर्ष के बाहर की बात ।

भारतवर्ष में भी वैदिक शिक्षा के स्थगित हो जाने से बहुत से धार्मिक परिवर्तन हुए । जिस प्रकार भारत के बाहरी लोगों ने अनेक प्रकार के दीपकों का आविष्कार किया भारतीय लोग भी इसी प्रकार के प्रयत्न करते रहे और एक वैदिक धर्म के सैकड़ों छोटे-छोटे सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए । इस प्रकार वैदिक धर्म के पश्चात् धर्म की दो धाराएँ हो गई । एक भारत के बाहर और दूसरी भारतवर्ष मं । इनमें क्या भेद था ? इसी प्रशन पर विचार करना है ।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.
Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.
సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
सम्पादक : श्री विट्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया । Narendra Bhavan
प्रबन्धक प्रकाशक : श्री हरिकिशन वेदालंकार, मन्त्री सभा आर्य प्रतिनिधि सभा, आ.प्र.- तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Ph : 040-24760030.